ORIGINAL RESEARCH PAPER

Commerce

KEY WORDS:

चुनावी अर्थप्रबंधन का भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव

लाल कुमार साह एम. कॉमए पी. एच. डी. ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

प्रस्तावना

भारतीय लोकतंत्र विश्व का सबसे बड़ा प्रजातांत्रिक ढ़ाँचा है। आजादी के बाद अबतक हुए 16वीं संसदीय चुनावों ने देश की जनता को प्रौढ़ बना दिया है। समय–समय पर होने वाली चुनावों में यहाँ के मतदाताओं ने अपनी सक्रिय भागीदारी देकर यह साबित कर दिया है कि यहाँ के मतदाता सामान्यतः सोंच–विचार कर ही मताधिकार का प्रयोग करते है। किंतु दुर्भाग्यवश लोकतंत्र का यह महान पर्व आज अर्थतंत्र द्वारा बुरी तरह प्रभावित है। चुनाव में, खासकर संसदीय चुनाव में एक साधारण व्यक्ति को अपनी उम्मीदवारी देना उसकी वश की बात नहीं रह गयी है। पैसे का जिस प्रकार नंगा प्रदर्शन होता है उसमे साधारण व्यक्ति को टिक पाना कठिन है।

अध्ययन समस्या का विवरण

जनतांत्रिक प्रणालियों में, जिस प्रकार की भी शासन–व्यवस्था हो, राजसत्ता अन्ततोगत्वा जनता में ही सन्निहित होती है। यह एक ऐसा सत्य है जिसका कोई विकल्प नहीं है। यह प्रणाली प्रत्यक्ष या परोक्ष हो, अध्यक्षात्मक या संसदात्मक हो, जनता में राजसत्ता के निवास को कोई अमान्य नहीं कर सकता। प्राचीन भारत या पाश्चात्य देशों में भी ऐसी अवधारणा प्रारम्भ से ही विद्यमान रही है।

आधुनिक काल में स्वतंत्र और प्रजातान्त्रिक देशों की प्रणाली का आधार प्रतिनिधित्व है। प्राचीन काल में राज्य छोटे होते थे और अधिकांश राज्यों का स्वरूप राजतांत्रिक था। अतः इन राज्यों के शासन–संचालन में जनता का विशेष हाथ नहीं रहता था। प्राचीन यूनान और प्राचीन भारत में छोटे–छोटे प्रजातान्त्रिक राज्यों में जनता प्रत्यक्ष रूप में शासन में भाग लेती थी, आधुनिक युग में तो अधिकांश देशों का रूप ही प्रजातान्त्रिक है। ''प्रजातंत्र जनता का, जनता के लिए और जनता के द्वारा शासन है।''

स्वतंत्र भारत के संविधान–निर्माण हेतु संविधान सभा का गठन हुआ। इसके प्रतिनिधियों का चुनाव अप्रत्यक्ष रीति से हुआ था। फिर भी इस सभा मे सभी वर्गों, जातियों, राजनीतिक दलों तथा हितों को समुचित प्रतिनिधित्व प्राप्त था। स्वतंत्र भारत में संसदीय चुनाव का आधार वयस्क मताधिकार को बनाया गया।

लोकतंत्र में संसदीय चुनाव की अपरिहार्यता निर्विवाद है। लोकतान्त्रिक सरकार की अवधारणा मात्र से ही कोई चिंतन करने के लिए प्रेरित हो जाता है कि इस व्यवस्था में दो चीजों में एक का चयन इसके लिए आवश्यक है। इनमे एक है सामाजिक उद्देश्य तथा दूसरा सरकार का कोई विशिष्ट प्रकार। इसके उपरान्त लोकतंत्र को अपने संचालन के लिए उत्तरदायित्व तथा प्रतिनिधित्व जैसे दो मानकों से होते हुए अभिन्न रूप से एक का चयन अत्यावश्यक है। यह तथ्य अपने आप मे अकाट्य है कि उत्तरदायित्व ही लोकतंत्र का मुख्य तथा व्यापक उद्देश्य है। प्रतिनिधित्व तो उत्तरदायित्व की प्राप्ति हेतु साधन मात्र है। यदि उत्तरदायित्व को सामाजिक उद्देश्य मान लिया जाय, तो विशिष्ट सरकारी तन्त्र के रूप में प्रतिनिधित्व की मान्यता भी विचारकों की दृष्टि में गैर वाजिब नहीं होगी। फिर भी ऐसा पाया गया है कि कुछ व्यवस्थापिकाएँ अतीत मे प्रतिनिधित्व की आवश्यकताएँ उस हद तक पूरा न कर सकी, जिसमें उत्तरदायित्व का एहसास हुआ हो।

किसी भी स्थिति में उत्तरदायी सरकार की आकांक्षा सर्वोपरि है और जनता सिर्फ प्रतिनिधित्व से ही सन्तुष्ट न होकर सीधे सरकार के निर्माण एवं विघटन में अपनी स्वीकृति चाहती है।

पूर्व अध्ययन की समीक्षाः

मित्रा और सिंह (2009) के अनुसार जनतंत्र लोक प्रशासन का सबसे उत्तम तरीका है जिसमें शासन का बागडोर जनता के हाथ में होती है। जनता के द्वारा चुने गये प्रतिनिधि राजसत्ता को संभालते है और जनहित में नियमों का निर्माण कर योजनायें तैयार करते है। किंतु जिस पवित्र उद्देश्य को ध्यान में रखकर चुनावी व्यवस्था को अंतिम रूप देना होता है उसमें धन बल के गलत उपयोग के कारण आम नागरीकों की भागीदारी नहीं बन पाती है। अच्छे समाजसेवी एवं ईमानदार व्यक्ति राजनीति से कटते जा रहे है। गलत हाथो में प्रतिनिधित्व हो जाने से सत्ता का दुरूपयोग स्वार्थ पूर्ति के लिए होने लगा है। जन कल्याण की भावना पीछे रह गई है।

ए.पी.वर्मा (1967) के अनुसार राजनीतिक दलो द्वारा पार्टी कोष में मोटी रकम लेकर टिकट देना, स्वतः भ्रष्टाचार का उदाहरण है। अतः आम नागरीकों का जनतंत्र में सही भागीदारी हो इसके लिए धनबल पर नियंत्रण तथा उम्मीदवारों को स्टेट फंड से राशि उपलब्ध कराने की आवश्यकता है जो इस अध्ययन का मुख्य आधार है जो इसकी महत्ता को स्पष्ट करता है। भ्रष्ट चुनाव पद्धति से बनी सरकार से स्वच्छ शासन प्रणाली का उम्मीद करना अव्यवहारिक लगता है। अतएव स्वच्छ चुनाव प्रणाली की स्थापना की दिशा में इस शोध प्रबंध का अपना महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है।

डॉ. फखराज जैन (2002) का कहना है कि कानून–निर्माण के लिए अनुभव और परिपक्वता के दृष्टिकोण से आयु की योग्यता भी प्रतिनिधियों के लिए अनिवार्य है। प्रत्येक देश में इसके लिए अलग–अलग आयु सीमा निर्धारित है। भारत में लोकसभा की उम्मीदवारी के लिए आयु 25 वर्ष तथा राज्यसभा के लिए आयु 30 वर्ष रखी गयी है। लोकसभा तथा विधानसभा के लिए आयु एक समान रखी गई है। यह भी सर्व मान्य सिद्धान्त बन चुका है कि किसी सरकारी पद पर आसीन व्यक्ति व्यवस्थापिका का सदस्य नहीं हो सकता। संयुक्त राज्य अमेरिका में कार्य पालिका विभाग के मंत्री या सहायक, व्यवस्थापिका के सदस्य, शक्ति प्रथक्करण सिद्धान्त के कारण नहीं को सकते। भारत में कानून के अनुसार जो व्यक्ति किसी लाभ के पद पर हो, व्यस्थापिका का सदस्य नहीं हो सकता। यदि ऐसा होगा तो वह प्रतिनिधि अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए अपने पद का दुरूपयोग करेगा।

बी.एल. फारिया (2002) के अनुसार जो उम्मीदवार मतों की बहु संख्या प्राप्त करता है, उसे निर्वाचित घोषित किया जाता है और वह व्यवस्थापिका सभा में केवल उन निर्वाचकों के दृष्टिकोण का ही प्रतिनिधित्व करता है, जिनके मतों को वह प्राप्त कर सकता है। जो लोग असफल उम्मीदवार को वोट दिये रहते हैं, वे प्रतिनिधित्वहीन रह जाते हैं। यह स्थिति उस समय और भी भयावह हो जाती है, जब सफल और असफल उम्मीदवारों द्वारा प्राप्त मतों का अन्तर प्रायः नाममात्र रह जाता है। प्रतिनिधित्व की ऐसी प्रणाली, जहां केवल बहुमत दलों को ही प्रतिनिधित्व मिलता हो, लोकतन्त्र का आधार नहीं है।

चूंकि देश की जनता जातियों में संगठित है। इसलिए राजनीति को जाति–संस्था का उपयोग करना ही पड़ेगा। अतः राजनीति में जातिवाद का अर्थ जाति का राजनीतिकरण मात्र है। जाति को अपने दायरे में खींचकर राजनीति उसे अपने काम में लाने का प्रयत्न करती है, दूसरी ओर राजनीति के द्वारा जाति बिरादरी को देश की व्यवस्था में भाग लेने का मौका मिलता है।

चुनाव में खर्च का भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव

चुनाव में, खासकर संसदीय चुनाव में क्षेत्र विस्तृत होने के कारण खर्च का अधिक आना स्वभाविक है। पाँच से सात लाख कि आबादी पर समान्यतः एक संसदीय क्षेत्र होता है। इतने बड़े विस्तृत क्षेत्र तथा बड़ी आवादी के मतदाताओं से संपर्क करने के लिए साधनों की जरूरत होती है जिससे एक निश्चित सीमा में खर्च कर पाना संभव नहीं हो पाता। किंतु जिस प्रकार चुनाव जीतने के लिए उम्मीदवारों द्वारा धन बल का प्रदर्शन किया जाता है उसका दुष्परिणाम कई रूपों में हमे दिखाई देता है। पार्टी द्वारा फंड निर्माण के लिए सदस्यता अभियान, विशेष चंदा अभियान, सहयोग निधि जैसे कार्यक्रम चलाये जाते है। चुनाव आयोग को चुनाव कार्य को पुरा करने के लिए मतपत्रों की छपाई, वोटिंग मशीन की व्यवस्था, मतदान के निर्देशों की छपाई, पुलिस बल, वाहन व्यवस्था मतदान कार्य में लगे कर्मियों के पारिश्रमिक आदि की व्यवस्था करनी पड़ती है। भारत जैसे देश जहाँ 542 सांसद चुनाव लड़कर संसद में आते है और उम्मीदवारों की संख्या लाखों की होती है चुनाव के लिए अर्थ प्रबंधन सामान्य बात नही है। कभी–कभी पुनः मतदान की स्थिति होने पर या मध्यावधि चुनाव होने की स्थिति में अतिरिक्त खर्च का बोझ उठाना पड़ता है। मतदान के दौरान जानमाल की क्षति होने पर हर्जाना कि राशि चुकानी पड़ती है। मतदान की गिनती तथा उसकी अंतिम स्थिति तक खर्च की व्यवस्था बनी रहती है। इस प्रकार चुनावी प्रक्रिया को पुरा करने में उम्मीदवारों के साथ–साथ आम नागरिकों के धन की भागीदारी तो होती ही है, सार्वजनिक धन भी बड़े पैमाने पर खर्च होते हैं। अतः चुनावी अर्थ प्रबंधन के लिए धन की व्यवस्था किस प्रकार से बनायी जाय की आम नागरीकों की इसमे भागीदारी हो सके एवं भारतीय अर्थव्यवस्था पर इसका अनुकूल प्रभाव पड़े।

निष्कर्ष

चुनाव में, खासकर संसदीय चुनाव में क्षेत्र विस्तृत होने के कारण खर्च का अधिक आना स्वभाविक है। पाँच से सात लाख कि आबादी पर समान्यतः एक संसदीय क्षेत्र होता है। इतने बड़े विस्तृत क्षेत्र तथा बड़ी आवादी के मतदाताओं से संपर्क करने के लिए साधनों की जरूरत होती है जिससे एक निश्चित सीमा में खर्च कर पाना संभव नहीं हो पाता। किंतु जिस प्रकार चुनाव जीतने के लिए उम्मीदवारों द्वारा धन बल का प्रदर्शन किया जाता है उसका दुष्परिणाम कई रूपों में हमे दिखाई देता है। पार्टी द्वारा फंड निर्माण के लिए सदस्यता अभियान, विशेष चंदा अभियान, सहयोग निधि जैसे कार्यक्रम चलाये जाते है। कभी–कभी पुनः मतदान की स्थिति होने पर या मध्यावधि

चुनाव होने की स्थिति में अतिरिक्त खर्च का बोझ उठाना पड़ता है। मतदान के दौरान जानमाल की क्षति होने पर हर्जाना कि राशि चुकानी पड़ती है। मतदान की गिनती तथा उसकी अंतिम स्थिति तक खर्च की व्यवस्था बनी रहती है। इस प्रकार चुनावी प्रक्रिया को पुरा करने में उम्मीदवारों के साथ–साथ आम नागरिकों के धन की भागीदारी तो होती ही है, सार्वजनिक धन भी बड़े पैमाने पर खर्च होते हैं।

संदर्भ स्रोतः–

1. दिजेन्द्र झा, एवं के.एम. श्रीमाली, प्राचीन भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृष्ठ 20–29.
2. डॉ. रामविलास शर्मा, भारतीय नवजागरण और यूरोप, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृष्ठ 79–83
3. श्रण ठतलमम डवकमतद क्मउवबतंबपमेए च्ब्68.69
4. श्रणै डपससए त्मचतमेमदजंजपअम क्मउवबतंबल ंदक ब्वदबमचज वध्तिमम ंदक थ्पत म्समबजपवदए च्ब्37.49.
5. पार्थ सारथी गुप्ता, ब्रिटेन का इतिहास एवं यूरोप का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृष्ठ 204.
6. एच. सी. वर्मा, मध्यकालीन भारत, भागः 1–2, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्विद्यालय, पृष्ठ 36
7. प्रो. विपन चन्द्रा, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृष्ठ 14
8. डॉ. सुशील माधव पाठक, भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृष्ठ 21
9. मित्रा एवं सिंह, भारत की चुनावी राजनीति के बदलते आयाम, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी–2006. पृ. 88.
10. 'ए.पी. वर्मा, स्टडी ऑफ मिड टर्म इलेक्शन इन बिहार', गोपी प्रकाशन, पटना, 1967. पृ. 12–13.
11. डॉ. फखराज जैन, भारतीय राज–व्यवस्था, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2002, पृष्ठ 270–276
12. बी. एल. फड़िया, भारतीय चुनाव व्यवस्था, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2002 पृष्ठ 278–279
13. बी. डी. बसु, भारत का संविधानः एक परिचय, प्रेंटिस हॉल ऑफ इण्डिया प्रा0 लि0, नई दिल्ली, 1998, पृष्ठ 94
14. डॉ0 एस0 एन0 जैन, भारतीय संविधान, शासन और राजनीति, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 2000, पृष्ठ 165–168
15. प्रो. वीकेएन मेनन, भारतीय नवजागरण और यूरोप, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2006. पृ. 102.
16. कोठारी, रजनी., भारत में राजनीति में जाति, ओरिएण्ट लॉंगमैन लिमिटेड, नयी दिल्ली, 2001. पृ. 154.